International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

भारतीय दर्शन में दुःख स्वरूप और उसका निर्णय

जोगेन्द्र
सुपुत्र श्री जगबीर सिहं
गांव बालंद, रोहतक।
विषय – संस्कृत

भूमिका–

रचयिताकार ने दुःख का लक्षण करते हुए कहा है कि–संसार में प्राणी मात्र को बुरा लगने वाले का नाम है दुःख, क्योंकि दुःख की कोई भी प्राणी इच्छा नहीं करता अपितु बिना शरीरादि के सुख दुःख रूप होने का लक्षण नहीं हो सकता इस कारण शरीरादि के वर्णन के पश्चात् अन्त में दुःख का यह लक्षण सूत्रकार ने किया है कि इस सूत्र में बाँधना शब्द से पीड़ाविषयक बुद्धि की सूचना होती है; जिससे बाँधना (पीड़ा) तथा उसके अनुषंग्डी (सम्बन्धी) शरीरादि गौण तथा मुख्य रूप से सूचित होते हैं। वही, बाँधना बुद्धि दुःख में मुख्य तथा शरीरादि में गौण है, क्योंकि दुःख के अनुभव में दोनों की अपेक्षा होने से ऐसा व्यवहार होता है।

दुःख की परीक्षा करते हुए न्याय दर्शन में कहा गया है कि विश्व में जिनके कारण होता है, ऐसे शरीर ज्ञानेन्द्रियाँ–कर्मेन्द्रियाँ को प्राप्त करके उत्पन्न होने को जन्म कहते हैं। जन्म प्राप्त होते ही उसे कर्मानुसार किसी भी जन्म में नीच, मध्यम और अच्छा अनेक प्रकार के दुःख हुआ करते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण जन्म अनेक प्रकार के दुःखों से व्याप्त है। ऐसा विचारने वाले सुख तथा दुःख एवं उनके साधक होने के कारण संसार में त्रस्त मनुष्यों को सांसारिक विषयों में दोष अवलोकित होने के कारण सांसारिक विषयों के प्रति राग नहीं रहता है। विचारक यह विचारता है कि जिन विषयों से सुख भी प्राप्त होता है, उनका परिणाम भी दुःख में ही बदल जाता है। इससे सम्पूर्ण विषयों में भोग की इच्छा नष्ट होने से वह सम्पूर्ण दुःखों से छूट जाता है। जैसे–दूध में विष मिलाने से दूध को नहीं पिया जा सकता है, उसी प्रकार दुःखरूप सम्पूर्ण संसार के विषयों को भी छोड़ देने वाला व्यक्ति ज्ञान तथा वैराग्य के बल से प्रारब्ध भोग के पश्चात् शरीरादि के सम्बन्ध न होने के कारण मुक्त हो जाता है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

वात्स्यायन ने भाष्य करते हुए स्पष्ट किया है कि देवता एवं विरक्त व्यक्तियों को अत्यन्त दुःख होता है। पशु, पक्षियों को मध्यम पीड़ा होती है; मनुष्यों को कम दुःख होता है।

सूत्रकार ने स्पष्ट लिखा है कि सांसारिक सम्पूर्ण व्यवहारों में भी पीड़ा (दुःख) के बीच बीच में सुख भी होता है; ऐसा प्राणिमात्र को अनुभव होने के कारण यह शास्त्रों में दुःखभावना का उपदेश संसार में सुख नहीं है, ऐसा निषेध सुख का नहीं करता, किन्तु जितना सुख होता है उसे भी यह दुःख है, ऐसी भावना करने से प्राणियों को संसार विषयों में वैराग्य होने से विषय वा सत्ता का त्याग होने के कारण पुनः उसे संसार का सुख भोगना नहीं पड़ता यह सिद्धान्त का आशय है।

इसी विषय में पूर्ववर्ती शंका करते हुए सिद्धान्त सूत्र से सूत्रकार कहते हैं। कि विषय सम्पादन की इच्छा में प्राणियों को अनेक इष्ट विषयों की प्राप्ति की इच्छा होती है जिससे कि उनकी कामनायें पूरी नहीं होती, अथवा पूरी होकर नष्ट हो जाती हैं; या कामना थोड़ी सी पूरी होती है, अथवा उसकी पूर्णता में बहुत से विघ्न उत्पन्न होते हैं। इत्यादि कामना करने में अनेक दोष होने के कारण उसे मन में बहुत दुःख होता है, जिससे उसका किसी भी सांसारिक सुख की इच्छा के विषयों में कभी दुःख नहीं होता, ऐसा नहीं है किन्तु दुःख अवश्य होता है, इसी कारण उनसे लालसा छूटकर उसे संसार दुःख पुनः न भोगना पड़े। इस आशय से शास्त्रों में सम्पूर्ण संसार दुःखरूप है ऐसा उपदेश किया है, न कि संसार में सुख है न कि ऐसा उनका कथन है, अत दुःख के समान सुख भी संसार में है यह सिद्ध होता है।

पूर्वपक्षी का समाधान सिद्धान्तीमत से स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि संसार में शास्त्र से निषिद्ध हिंसा (हत्या) तथा निषिद्ध मांसादि भक्षणरूप अनेक प्रकार के दुःखों में यह सुखदायक है, ऐसा अज्ञानियों को अभिमान भी होता है; इस कारण शास्त्र को दुःख भावना करने के उपदेश का अवसर है।

भाष्यकार ने सिद्धान्त सूत्र से स्पष्ट करते हुए कहा है कि अनेक प्रकार के दुःखों में अज्ञानी मनुष्यों को सुख का अभिमान (भ्रम) होने के कारण भी शास्त्र उसे दुःख समझने की भावना का उपदेश करता है, क्योंकि संसार के सुख का अनुभव करने वाले यह अज्ञानी प्राणी सुख

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

ही को सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ समझते हैं। कि–संसार में सुख को छोड़कर दूसरा कोई निःश्रेयस (मोक्ष) सुख नहीं है।

निर्णय–

सन्देह एवं विचार करके पक्ष और विपक्ष के उदाहरणों का प्रदर्शन करते हुए, जिस विषय का निश्चय होता है उसे निर्णय कहते हैं। इसका आशय यह है कि पक्ष की स्थापना अर्थात् साधन तथा उसका खण्डन (प्रतिपक्ष) मिलकर जिस विषय का विचार करने पर उन दोनों में से किसी एक पक्ष की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् उन दोनों में से एक पक्ष के प्रमाण एवं उदाहरण दूसरे पक्ष के प्रमाण एवं उदाहरण से पराजित हो जाते हैं। इस विषय का निश्चय होने पर, वह निर्णय कहलाता है। इसमें निर्णय में स्थापना साक्षात् और खण्डन परम्परा से होता है, ऐसा वार्तिककार ने माना है।

भाष्य करते हुए वात्स्यायन ने स्पष्ट किया है कि सूत्र में आए पक्ष तथा प्रतिपक्ष शब्द का अर्थ किया है कि किसी पक्ष की स्थापना करने को साधन तथा निषेध करने को खण्डन कहते हैं। ये दोनों शब्द साधन तथा उपालम्भ, जिस वादकथा में उपर्युक्त पक्ष तथा प्रतिपक्ष के आश्रय से सम्बद्ध अर्थात् साथ–साथ चलते हुए पक्ष प्रतिपक्ष ऐसे कहे जाते हैं। उन दोनों में से किसी एक की अन्त में निवृत्ति हो जाती है। अर्थात् एक पक्ष स्थिर रहता है, दूसरा पक्ष टुकड़े.–टुकड़े हो जाता है। यह निर्णय की स्थिति में अवश्य होता है। इसी को न्याय दर्शन में निर्णय कहा है।

यहाँ भाष्यकार ने इस विषय में पूर्व पक्ष की ओर से प्रश्न करते हुए कहा है कि पक्ष तथा प्रतिपक्ष दोनों से मिलकर अर्थ का निश्चय नहीं हो सकता है। क्योंकि एकवादी प्रतिज्ञा अर्थात् साध्य अर्थ की हेतु से स्थापना करता है। तथा दूसरे प्रतिवादी के निषेध का उत्तर देता है। दूसरा प्रतिवादी स्थापना के खण्डन में युक्ति देता है। जिससे वह पूर्ववादी तथा उत्तर प्रतिवादी इन दोनों में एक निवृत्त हो जाता है। उसके निवृत्त होने पर जो स्थिर होता है उसे अर्थ का निश्चय अर्थात् निर्णय कहा जाता है।

इन दोनों में से निर्णय किस युक्ति से माना जाता है? इसका उत्तर देते हुए कहा है कि एक पक्ष के होने की सम्भव होना तथा द्वितीय पक्ष का सम्भव न हो सकना, वे ये सम्भव तथा असम्भव में से एक सम्भव पक्ष स्थिर रहता है, और असम्भव पक्ष खण्डित हो जाता है। इसी को आशय का दूर होना कहते हैं; यही निर्णय कहलाता है। सूत्र में विमृथ्य पद का अर्थ करते हुए भाष्यकार ने उसका प्रयोजन बतलाया है कि विमर्श अर्थात् संशय का करना अपेक्षित है। न्याय में संशय होने पर ही पक्ष तथा प्रतिपक्ष के होने पर निर्णय की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इस कारण यह विमृश्य पद निर्णय का उपादान कारण होने के कारण निर्णय के पूर्व में लिया जाता है। भाष्यकार में अवद्योत्य पद का अर्थ है कि नियम से विषय करना अर्थात् संशय पूर्वक निर्णय होना एक धर्मी में दो परस्पर विरुद्ध धर्मों में होता है। ऐसा मानना अपेक्षित है अर्थात् ऐसा जान करके अवद्योत्यपद का अर्थ है।

वास्तव में दो विरुद्ध धर्मों का आश्रय हो सकता है। जैसे क्रिया के आश्रय को द्रव्य कहते हैं। इस प्रकार द्रव्य के लक्षण के कहने पर जिस घटादि द्रव्यों में क्रिया को आश्रयता का कारण अर्थात् प्रमाण के बल से हो सकती है। यह क्रिया का आश्रय कहलाता है, जो आकाश आदि द्रव्य अर्थात् प्रमाण के बल से न होने से क्रिया का आधार नहीं हो सकता, वह क्रिया रहित होता है। इस प्रकार उपर्युक्त दोनों क्रिया की आधारता तथा अनाधारता विरुद्ध धर्म द्रव्यों में रहने से दोनों धर्मों का समुच्य हो सकता है।

एक ही धर्मी में काल में न होने वाले दो विरुद्ध धर्मों के रहने में काल के भेद से व्यवस्था होने के कारण काल का विकल्प होता है। जैसे वही, घटादि द्रव्य क्रिया के सम्बन्ध रहने पर क्रिया के आधार के सम्बन्ध रहने पर क्रिया का आधार तथा उत्पत्ति के पूर्व, क्रिया के शांत होने पर भी अथवा भविष्य में नष्ट कर्म वाला द्रव्य क्रिया रहित होता है, अथवा काल के भेद से क्रिया की आधारशीलता तथा अनाधारशीलता दो विरोधी धर्म एक धर्मी में रहते हैं। भाष्यकार इसको और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पक्ष तथा प्रतिपक्ष दोनों से मिलकर संशयपूर्वक निर्णय अर्थात् निश्चय होता है, ऐसा नियम नहीं है। परन्तु इन्द्रिय तथा पदार्थ के संयोग से सम्बन्ध आदि सन्निकर्ष से उत्पन्न प्रत्यक्ष में केवल अर्थ के निश्चय को निर्णय कहते हैं।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

संदर्भ ग्रंथ सूची

- बाधनालक्षणं दुखम्।।21।।

  —न्या0 द0, अ0 1, आ0 1, सं0 21

- विविधवाधनायोगाद् दुखमेव जन्मोत्पत्ति।। 55।।

  —न्या0 द0, अ0 4, आ0 1, सू0 55

- न. सुखस्यान्तरालनिष्पत्ते।। 56।।

  —न्या0 20, अ0 4, आ0 1, सू0 56

- बाधनानिवृत्तेर्वेदयत पर्येषणदोषादप्रतिषेधः।। 57।।।

  —न्या0 90, अ0 4, आ0 1, सू0 57

- दुखविकल्पे सुखाभिमानाच्च।। 58।।

  —न्या0 20, अ0 4, आ0 1, सू0 58

- विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णय।। 41

  —न्या0 20, सू0 1/41

- स्थापना साधनं प्रतिषेध उपालम्भः। सौ साधनोपालम्भौ पक्षप्रतिपक्षाश्रयौ व्यतिषक्ता वनुबन्धेन प्रवर्तमानौ पक्षप्रतिपक्षावित्युच्येते।

  —न्या0 20, भा0, पृ0 96

- नेदं पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं सम्भवतीति एको हि प्रतिज्ञातमर्थ हेतुः स्थापयति प्रतिषिद्ध योद्धरति द्वितीयस्य।

  —न्या0 20, वा0, भा0, पृ0 96

- सोऽयं विमर्श पक्षप्रतिपक्षाववद्योत्य न्यायं प्रवर्तयतीत्युपादोयत इति।

—न्या0 20, वा0, भा0, पृ0 96

- यत्र तु धर्मी सामान्यगतो विरुद्धौ धर्मौ हेतुतः सम्भवतः तत्र समुच्चयः हेतुतोऽर्थस्य तथा भावोपपत्ते।।

—न्या0 30, वा0, भा0, पृ0 97

- एकधर्मस्थयोश्च विरुद्ध योर्द्धर्मयोरयुगपद्भाविनो कालविकल्पः यथा तदेव द्रव्यं क्रिया युक्ते क्रियावतय अनुत्पन्नोपरत क्रियं पुरनक्रियमिति।

—न्या0 20, वा0, भा0, पृ0 97